ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol-3* Issue-3*April- 2018
Innovation The Research Concept

भगवद्गीता में सम्पूर्ण जीवन प्रबन्धन और विश्वबन्धुत्त्व

सारांश

आज भले ही विज्ञान ने कितनी ही उन्नति कर ली हो किन्तु मानव जीवन अनेक विसंगतियों से घिरा हुआ है। श्रीमद्भगवदगीता एक ऐसा महान ग्रन्थ है जिसमें मनुष्य की सभी समस्याओं का समाधान प्रस्तुत किया गया है। गीता में जीवन के प्रत्येक पक्ष का वर्णन है यथायोग्य, तर्क विद्या, जीवन प्रबन्धन, पुरूषार्थ, राजनीति एवम् धर्म स्थापना इत्यादि। गीता का प्रधानतम उद्घोष है समत्व। यही समत्व योग कहलाता है। योगी मनुष्य सभी विकारों पर विजय पा सकता है। कर्मयोगी बनकर ही संसार सागर से पार उतरा जा सकता है। मानसिक अवसाद एवम् दुराचरण जैसी व्याधियों से मुक्ति का मार्ग गीता में दर्शाया गया है। गीता को सर्वशास्त्रमयी कहा गया है। यह एक धार्मिक ग्रन्थ मात्र नहीं है अपितु आचार शास्त्र का ऐसा कोष है जिसमें मनुष्य के कर्तव्य, आचरण, जीवन प्रबन्धन एवम् व्यक्तित्व के विकास के सूत्र विद्यमान है।

मुख्य शब्द : विश्वबन्धुत्व, जीवन प्रबन्धन, समत्व, आसक्ति।

अनिता नैन
सहायक प्रोफेसर,
संस्कृत विभाग,
सेठ बनारसी दास कॉलेज ऑफ एजुकेशन,
पिपली रोड़, कुरुक्षेत्र

प्रस्तावना

आधुनिक युग में विज्ञान चरमोत्कर्ष पर है किन्तु साथ ही मनुष्य अवसाद और क्लेश से घिरा हुआ है। जीवन में चहुँ ओर हाहाकार है। मानव के अंदर भी और बाहर भी। चिकित्सा–विज्ञान में इसका कोई समाधान नही हैं। ऐसी अवस्था में हमारे धर्मग्रन्थ पथप्रदर्शक की भूमिका निभाते हैं। इनमें मानव मन में उठते अर्न्तद्वन्द्व को शान्त करने का सरल मार्ग है। वर्तमान पीढ़ी भौतिकता की अंधी दौड़ में मानसिक विकारों से ग्रस्त है। ऐसे में आवश्यकता है अपनी सनातन परम्परा में वर्णित नैतिक उपदेशों को ग्रहण करके आत्मसात् करने की। श्रीमद्भगवद्गीता एक ऐसा ही महान ग्रन्थ है जिसमें मनुष्य के मनोबल को सुदृढ़ बनाकर विषम परिस्थितियों में भी धैर्य व साहसपूर्ण जीवन जीने की कला का शिक्षण है। गीता में जीवन का ऐसा कोई भी पक्ष अछूता नहीं है जिसके विषय में वर्णन न किया गया हो। यथा–योग, तर्कविद्या, मनोविज्ञान, व्यक्तित्व विकास, जीवन प्रबन्धन, पुरुषार्थ, नैतिकता, संवाद–कला, राजनीति एवं धर्म की स्थापना इत्यादि। इसीलिए इसके विषय में स्वयं वेदव्यास ने कहा है–

''गीता सुगीता कर्त्तव्या किमन्यैः शास्त्रसंग्रहः।''[1]

ये सारे विषय समस्त विश्व से सम्बन्धित हैं जो गीता की सार्वभौमिकता को दर्शाते हैं। प्रस्तुत शोध पत्र में गीता में प्रतिपादित जीवन–प्रबन्धन से लेकर धर्म–स्थापना तक के विषयों का विस्तारपूर्वक वर्णन अभीष्ट है।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत शोधपत्र का उद्देश्य है – मनुष्य के हृदय में व्याप्त द्वन्द्व का समाधान गीता में प्रतिपादित जीवन–प्रबन्धन को अपनाकर किया जा सकता है।

योग

योग केवल अध्यात्म का विषय नहीं है अपितु एक वैज्ञानिक विधि है, मन की चंचलता पर काबू पाकर उसे एकाग्र करने की। यह एक मानसिक प्रशिक्षण है, जिसमें अज्ञान को दूर करके आत्मा को निर्मल बनाया जा सकता है। जब मन पवित्र हो जाता है तो सारे राग–द्वेष, वैर–भाव स्वतः मिट जाते हैं जो पाप का कारण हैं। मन के अहंकार का दमन करने के लिए गीता में योग के तीन मार्ग बताए गए हैं– ज्ञानमार्ग, भक्तिमार्ग एवं कर्ममार्ग। जिसको जो मार्ग उचित लगे उसका चयन किया जा सकता है। भगवान श्रीकृष्ण के अनुसार कर्म के द्वारा ज्ञान के सर्वोच्च शिखर तक पहुँचा जा सकता है। कर्मयोगी बनकर ही व्यक्ति सफलता को प्राप्त कर सकता है। यह निष्काम कर्म ज्ञान और भक्ति दोनों से अनुप्राणित है। किन्तु हमारे कर्म ऐसे हों कि हम किसी बन्धन में न पड़ें। इसलिए योग को परिभाषित करते हुए गीता में कहा गया है– ''योगः कर्मसु कौशलम्''[2] अर्थात् कर्मों में कुशलता ही योग है। निष्काम भाव से संसार एवं

ईश्वर के निमित्त किया गया कर्म बन्धन का कारण नहीं होता। गीता का यह निष्काम कर्मयोग वर्तमान युग के लिए अत्यन्त लाभकारी है। आज प्रत्येक मनुष्य समस्याओं से घिरा हुआ है। समाधान न मिलने पर वह अवसादग्रस्त हो जाता है। जैसे अर्जुन ने विषादग्रस्त होकर स्वयं किंकर्त्तव्यविमूढ़ होते हुए युद्ध क्षेत्र में शस्त्र डाल दिए थे। अर्जुन ने जो–जो प्रश्न श्रीकृष्ण के सामने रखे वे मानो सम्पूर्ण मानवजाति की शंकाएँ हों। श्रीकृष्ण भगवान ने भी अत्यन्त सरल शैली में गीता के माध्यम से समाधान प्रस्तुत किया है। गीता के इस कर्मयोग को अपनाकर हम अपनी जीवनशैली को सरल एवं उत्तम बना सकते हैं।

तर्कविद्या

गीता में स्वाध्याय, तर्क–वितर्क, विश्लेषण, संवाद, इन्द्रिय प्रशिक्षण इत्यादि का पदे–पदे विवरण मिलता है। श्रीकृष्ण–अर्जुन संवाद एवं उनका परस्पर तर्क–वितर्क तर्कविद्या का अनुपम उदाहरण है। ज्ञान दो प्रकार का माना गया है– सांसारिक एवं आध्यात्मिक। गीता के अनुसार विद्या भी दो प्रकार की है– परा विद्या एवं अपरा विद्या। परा विद्या ब्रह्मज्ञान से सम्बन्धित है जो मनुष्य को आध्यात्मिक उन्नति प्रदान करती है। अपरा विद्या सांसारिक कर्मों से सम्बन्धित है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली में इन दोनों को पाठ्यक्रम में शामिल करके युवा पीढ़ी को लाभान्वित किया जा सकता है। अर्जुन द्वारा प्रश्न शैली में शंका और श्रीकृष्ण द्वारा तर्कयुक्त समाधान प्रस्तुत करना तर्कविद्या का सर्वोत्तम दृष्टान्त है। शिक्षा में तर्कविद्या का महत्त्व सर्वविदित है। अतः गीता की शैली नवीनतम शिक्षण पद्धति के लिए आदर्श हो सकती है।

व्यक्तित्व विकास

गीता में प्रतिपादित नैतिकता, धर्म की स्थापना, कर्मयोग, कर्त्तव्यपालन इत्यादि सिद्धान्त मनुष्य के व्यक्तित्व–विकास के लिए अत्यन्त उपादेय हैं। इसमें चोरी, व्याभिचार, झूठ, छल–कपट, हिंसा, अभक्ष्य–भोजन और प्रमाद आदि नीच कर्मों का सर्वथा त्याग करने का उपदेश दिया गया है।[3] यदि मनुष्य इसको ग्रहण करले तो उसका व्यक्तित्व पवित्र एवं आदर्श बन सकता है क्योंकि आज की युवा पीढ़ी से नैतिक मूल्य नदारद हो रहे हैं। सत्य और अहिंसा का आचरण युवा वर्ग के लिए अत्यन्त आवश्यक है। भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में स्पष्टतया कहा है कि कर्मयोगी ममत्वबुद्धि रहित केवल इन्द्रिय, मन, बुद्धि और शरीर द्वारा भी आसक्ति को त्यागकर अन्तःकरण की शुद्धि के लिए कर्म करते हैं।[4]

मनुष्य के व्यक्तित्व निर्माण में सत्त्व, रज और तम, इन तीन गुणों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। इन तीन गुणों के प्रभाव स्वरूप मनुष्य में ममत्त्व, आसक्ति और अभिमान उत्पन्न होता है। इनमें सत्त्वगुण निर्मल होने के कारण प्रकाश करने वाला और विकाररहित है।[5] जब सत्त्वगुण बढ़ता है तो मनुष्य के मन की चंचलता अपने आप नष्ट हो जाती है। इससे उसके चित्त और इन्द्रियों में दुख और आलस्य का अभाव होकर चेतनाशक्ति की वृद्धि हो जाती है। रजोगुण से कामना और आसक्ति की उत्पत्ति होती है।[6] तमोगुण का कार्य है– अन्तः करण में ज्ञानशक्ति का अभाव करके उसमें मोह उत्पन्न कर देना। इससे मनुष्य में प्रमाद और निद्रा बढ़ती है।[7] इस प्रकार सत्त्वगुण सुख में लगाता है और रजोगुण कर्म में तथा तमोगुण ज्ञान को ढककर प्रमाद में लगाता है।[8]

इस प्रकार त्रिगुण का यह सिद्धान्त व्यक्तित्व निर्माण के लिए महत्त्वपूर्ण है। इसका अध्ययन मनुष्य में सात्त्विक प्रकृति बढ़ाने में सहायक सिद्ध हो सकता है। आज व्याभिचार, भ्रष्टाचार, छल–कपट इत्यादि अनेक वैश्विक समस्याएँ हैं। यदि गीता के इस सिद्धान्त को जीवन में अपनाया जाए तो रजोगुण और तमोगुण से युक्त जीवनशैली में परिवर्तन सम्भव है। विशेषकर बाल्यावस्था से बालकों में यह उपयोगी हो सकता है। कहा भी गया है– ''सत्त्वगुण में स्थित पुरुष स्वर्गादि उच्च लोकों में जाते हैं, रजोगुण मे स्थित राजस पुरुष मध्य में अर्थात मनुष्य लोक में रहते हैं और तमोगुण के कार्यरूप निद्रा, प्रमाद और आलस्यादि में स्थित तामस पुरुष अधोगति को अर्थात् कीट, पशु आदि नीच योनियों को प्राप्त होते हैं।''[9]

सामाजिक समता

गीता का प्रधानतम उद्घोष है– समत्व। ज्ञान, कर्म और भक्ति– तीनों ही मार्गों में साधनरूप में समता की आवश्यकता बताई गई है। यथा ''सिद्धयासिद्धयों समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।''[10] अर्थात् सिद्धि और असिद्धि में समान बुद्धिवाला होकर योग में स्थित हुआ कर्त्तव्य कर्मों को करना ही समत्व योग कहलाता है। मनुष्य के व्यवहार में समता का समावेश करना ही इसका मुख्य उद्देश्य है। इस समता तत्त्व को सुगमता से समझाने के लिए भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में अनेक प्रकार से सम्पूर्ण प्राणी, क्रिया, भाव और पदार्थों में समता की व्याख्या की है। जैसे–

मनुष्यों में समता

''सुहृन्मित्रार्युदासीन मध्यस्थ द्वेष्यबन्धुषु।
साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते।।''[11]

अर्थात् सुदृढ़ मित्र, वैरी, उदासीन, मध्यस्थ, द्वेष्य और बन्धुगणों में, धर्मात्माओं और पापियों में भी समानभाव रखने वाला अत्यन्त श्रेष्ठ है।' इस श्लोक में स्पष्टतया 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का उद्घोष परिलक्षित होता है। आज के वैश्विक परिदृश्य में इसकी अत्यन्त आवश्यकता है। आतंकवाद जैसी भयंकर समस्या से निपटने के लिए गीता के इस समता सिद्धान्त का पालन महत्त्वपूर्ण सिद्ध हो सकता है।

सम्पूर्ण जीवों में समता

अर्जुन को सम्बोधित करते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं कि हे अर्जुन! जो योगी अपनी भाँति सम्पूर्ण भूतों में समभाव देखता है और सुख अथवा दुःख में भी सबमें समता का भाव रखता है, वह योगी परम श्रेष्ठ माना गया है।[12] इसी प्रकार आगे व्यक्ति, क्रिया, पदार्थ और भाव की समता का वर्णन करते हुए उनके द्वारा अन्यत्र कहा गया है– 'जो शत्रु–मित्र में, मान–अपमान में, सर्दी–गर्मी में और सुख–दुःखादि द्वन्द्वों में सम और आसक्ति रहित है, वह योगी कहलाता है।[13] इस प्रकार जो सर्वत्र समदृष्टि है, जो सब में समबुद्धि रखता है वही सच्चा साम्यवादी है। गीता का यह साम्यवाद आजकल के साम्यवाद को सम्पूर्णता प्रदान करता है। आधुनिक साम्यवाद हिंसायुक्त है और गीता का साम्यवाद अहिंसात्मक। वह स्वार्थमूलक है और यह स्वार्थ को त्यागने की शिक्षा देता है। इसमें समस्त जगत में परमात्मा का स्वरूप दिखाकर सबका समान रूप

से आदर करने की शिक्षा दी गई है जिसे अपनाकर सामाजिक सौहार्द, धार्मिक सहिष्णुता का परिवेश स्थापित किया जा सकता है।

नैतिक मूल्यों की स्थापना

गीता में पदे–पदे नैतिक आचरण का संदेश प्राप्त होता है। मानसिक अवसाद और दुराचरण जैसी समस्याएँ सर्वत्र व्याप्त हैं। इसका कारण है– नैतिक मूल्यों का ह्रास। गीता के उपदेश में निहित शिक्षाओं को अपनाकर इन समस्याओं का समाधान किया जा सकता है। श्रीकृष्ण ने गीता में उद्घोष किया है– ''यदा–यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।''[14] अर्थात् जब–जब धर्म की हानि होती है तो उसकी स्थापना के लिए मैं अपने रूप को रचता हूँ अर्थात् साकार रूप में लोगों के सम्मुख प्रकट होता हूँ। उन्होंने गीता में निरन्तर कर्म में रत रहने की भी प्रेरणा दी है जिससे भाग्यवाद व आलस्य से मुक्त हुआ जा सकता है। यहाँ पर 'धर्म' एवं 'कर्म' दोनों आचरण की शुद्धता से सम्बन्धित है। मन, वचन और कर्म की शुद्धता आचरण को पवित्र बनाती है। गीता में कर्त्तव्य–कर्म और अकर्त्तव्य–कर्म को व्यापक रूप में दर्शाया गया है। उन्होंने कहा है कि हे अर्जुन! कर्म क्या है? और अकर्म क्या है? इस प्रकार का निर्णय करने में बुद्धिमान पुरुष भी मोहित हो जाते हैं। इसलिए वह कर्मतत्त्व, मैं तुम्हें भलींभाँति समझाकर कहूँगा।

आसक्ति आचरण को दूषित करती है अतः इसका विस्तारपूर्वक वर्णन भी गीता में किया गया है यथा– आसक्ति से विषयों की कामना उत्पन्न होती है और कामना पूर्ण न होने पर क्रोध उत्पन्न होता है। क्रोध से अत्यन्त मूढ़भाव उत्पन्न हो जाता है, मूढ़भाव से स्मृति में भ्रम हो जाता है, स्मृतिभ्रम होने से बुद्धि का नाश हो जाता है और बुद्धि का नाश होने से पुरुष अपनी स्थिति से गिर जाता है।[15] इसलिए मनुष्य को इन्द्रियों को वश में रखने का अभ्यास करना चाहिए। चोरी, व्यभिचार, झूठ, कपट, छल, हिंसा आदि कर्मों का मन, वचन और कर्म से त्याग आचरण की शुद्धता के लिए आवश्यक है।

निष्कर्ष

इस प्रकार गीता में कोई विषय अछूता नहीं है। महाभारत में भी कहा गया है– 'सर्वशास्त्रमयी गीता।' अर्थात् गीता सर्वशास्त्रों का सार है। यह एक ऐसा विलक्षण ग्रन्थ है जिसका एक–एक शब्द अक्षरशः सत्य है। यह एक धार्मिक ग्रन्थ मात्र नहीं है अपितु आचारशास्त्र का कोष है जिसमें मनुष्य के कर्त्तव्य, आचरण, जीवन–प्रबन्धन एवं व्यक्तित्व विकास के सूत्र विद्यमान हैं। इसे पाठ्यक्रम में शामिल करने की आवश्यकता है ताकि बालकों का चरित्र निर्माण सम्यक् रूप में हो सके। विश्व की कोई भी ऐसी समस्या नहीं है जिसका समाधान गीता में न हो। आतंकवाद, भ्रष्टाचार, धार्मिक–उन्माद वैर–भाव इत्यादि सबका शमन गीता का प्रतिपाद्य विषय है। गीता में इतने विषय यत्र–तत्र भरे पड़े हैं जिनका एक शोध पत्र में वर्णन असम्भव है। अतः इनका संक्षिप्त परिचय ही यहाँ अभीष्ट है। इन समस्याओं के निवारण हेतु गीता के गहन अध्ययन की आवश्यकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *महाभारत, भीष्मपर्व, 43.1*
2. *श्रीमद्भगवद्गीता, 2.50*
3. *तत्रैव, 3.8*
4. *तत्रैव, 5.11*
5. *तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयम्। गीता, 4.6*
6. *रजो रागात्मकं .... । तत्रैव, 4.7*
7. *तमस्त्वज्ञानजं विद्धि मोहनं .... । तत्रैव, 4.8*
8. *सत्वं सुखे संजयति .... । तत्रैव, 4.9*
9. *उर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति ....। तत्रैव, 4.18*
10. *तत्रैव, 2.48*
11. *तत्रैव, 6.9*
12. *आत्मोपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन। सुखं वा यदि वा दुखं स योगी परमोमतः।। तत्रैव, 6. 32*
13. *समः शत्रौ च मित्रे तथा मानापमानयोः। .... तत्रैव, 12.18*
14. *तत्रैव, 4.7*
15. *''क्रोधात् भवति सम्मोहः .... बुद्धिनाशात्प्रणश्यति।।'' तत्रैव, 2.63*